पाठ्यक्रम - ८

८ अ जैन कर्म सिद्धान्त-एक परिचय

जो आत्मा को परतंत्र करता हैं, दु:ख देता है, संसार में परिभ्रमण कराता है उसे कर्म कहते हैं। अनादि काल से जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है, इन दोनों का अस्तित्व स्वत: सिद्ध है। ''मैं हूँ'' इस अनुभव से जीव जाना जाता है और जगत में कोई दरिद्र है कोई धनवान है, कोई रोगी है कोई स्वस्थ है इस विचित्रता से कर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

वे कर्म मुख्य रूप से आठ प्रकार के हैं - (१) ज्ञानावरणी (२) दर्शनावरणी (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अंतराय

(1) ज्ञानावरणी कर्म - जो कर्म ज्ञान को न होने दे अथवा ज्ञान की हीनाधिकता जिस कर्म के उदय से हो उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। जैसे एक व्यक्ति विद्वान और दूसरा मूर्ख, किसी को बार-बार पढ़ने पर याद होता है तो किसी को एक बार पढ़ने पर याद होता है। मूर्ति पर पड़ा हुआ कपड़ा जिस तरह मूर्ति का ज्ञान नहीं होने देता वैसे ही ज्ञानावरण कर्म का कार्य है।

दूसरों के गुणों को देखकर भीतर ही भीतर जलना, गुरु का नाम छिपाना, दूसरों के ज्ञान का आदर न करना, किताब, कॉपी आदि फाड़ देना, पढ़ने वालों को बाधा उत्पन्न करना इत्यादि अनेक कारणों से ज्ञानावरणी कर्म का आस्रव-बंध होता है।

(2) दर्शनावरणी कर्म - जो कर्म ज्ञान के पूर्व होने वाले दर्शन को न होने दे तथा जिस कर्म के उदय से बहुत निद्रा आए, गहन निद्रा आए, कम निद्रा आए उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं। द्वारपाल जैसे महल में प्रवेश ही नहीं करने देता है उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म भी पदार्थ का सामान्य अवलोकन (दर्शन) नहीं होने देता है।

जिनवाणी का अनादरपूर्वक श्रवण करना, दर्शन आदि में बाधा पहुँचाना, बहुत देर तक सोना, दिन में सोना, आलस्य करना, इन्द्रिय की विपरीत प्रवृत्ति करना इत्यादि कारणों से दर्शनावरणी कर्म का आस्रव-बंध होता है।

(3) वेदनीय कर्म - जिस कर्म के उदय से सुख और दु:ख रूप वेदन हो/अनुभव हो, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। पीड़ा होने पर दु:ख तथा अच्छे भोग, सामग्री मिलने पर सुख की अनुभूति होना वेदनीय कर्म का कार्य है। जैसे गुड़ की चाशनी लपटी तलवार को चाटने पर जीभ के कटने पर उसकी पीड़ा में दु:ख तथा गुड़ की मधुरता में सुख का अनुभव होता है।

स्वयं रोना एवं दूसरों को रुलाना, मारना, पीटना, बाँधना, दूसरों की निन्दा, विश्वासघात इत्यादि कार्यो से असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। सभी प्राणियों पर अनुकम्पा, अर्हत् पूजा, दान, तपस्वी की वैयावृत्य करना, विनयशीलता आदि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बंध होता है।

(4) मोहनीय कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को नहीं जान पाता उसे मोहनीय कर्म कहते हैं अथवा जिस कर्म के उदय से बुद्धि में भ्रम उत्पन्न होता है, गाफिलता हो उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

शरीर को ही जीव (आत्मा) मानना, अपने से पृथक् वस्तुओं को अपना मानना, संयम पालन में कष्ट मानना इत्यादि मान्यताएँ मोहनीय कर्म के उदय से होती हैं। जैसे शराब पिया हुआ व्यक्ति कभी माँ को पत्नी कहता है तो कभी पत्नी को माँ कहता है, इस तरह का विपरीत परिणमन मोहनीय कर्म कराता है। सच्चे धर्म की निंदा करना, धार्मिक कार्यों में अन्तराय पहुँचाना, अत्यधिक कषाय करना, बहुत बोलना, बहुत हँसना इत्यादिक कार्यों से मोहनीय कर्म का आस्रव व बंध होता है।

(5) आयु कर्म - जिस कर्म के उदय से मनुष्यादि भवों में/गतियों में रुकना होता है उसे आयु कर्म कहते हैं। जैसे दोनों पैरों में पड़ी हुई बेड़ी (सांकल) मनुष्य को स्वेच्छा से यहाँ-वहाँ नहीं जाने देती एक ही स्थान पर रोके रखती है।

बहुत आरम्भ करने व बहुत परिग्रह रखने से नरक आयु का, मायाचारी करने से तिर्यञ्च आयु का, अल्प आरंभ और परिग्रह से मनुष्य आयु का तथा सराग संयम, संयमासंयम रूप परिणामों से देव आयु का बंध होता है।

(६) नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से अनेक प्रकार से शरीर की रचना होती है उसे नाम कर्म कहते हैं। मोटा-पतला, काला-गोरा, सुरूप-कुरूप इत्यादि कार्य नाम कर्म के माने जाते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है उनमें रंग भरता है इसी तरह का कार्य नाम कर्म का है।

मन, वचन, काय की कुटिलता से अशुभ नाम कर्म का तथा मन, वचन काय की सरलता से शुभ नाम कर्म का बंध होता है

(७) गोत्र कर्म - जिस कर्म के उदय से उच्च कुलों में अथवा नीच कुलों में जन्म होता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं अथवा जिस

कर्म के उदय से उच्च आचरण में व नीच आचरण में प्रवृत्ति होती है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जैसे कुम्हार अनेक प्रकार के छोटे बड़े घड़े बनाता है उसी प्रकार गोत्र कर्म भी उच्च गोत्री व नीच गोत्री बनाता है।

दूसरों की निन्दा, अपनी प्रशंसा करने से जाति आदि का मद (घमंड) करने से नीच गोत्र का बंध होता है। आत्म निन्दा, पर प्रशंसा, निरभिमानता, नम्र वृत्ती रखने से उच्च गोत्र का बंध होता है।

(८) अन्तराय कर्म – जिस कर्म के उदय से दाता और पात्र के बीच लेन-देन में विघ्न उत्पन्न हो जाए उसे अंतराय कर्म कहते हैं अथवा वस्तु सामने होते हुए भी जिस कर्म के उदय से उसका ग्रहण, भोग, उपयोग न हो सके उसे अंतराय कर्म कहते हैं जैसे मुनिराज को आहार दान देना चाहे किन्तु मुनिराज के पड़गाहन का योग ही प्राप्त न हो, घर में मिठाई बनाई हो और बुखार हो जाए, मिठाई न खा सकें इत्यादि अन्तराय कर्म के कार्य हैं। इस कर्म को खजांची (कोषाध्यक्ष) की उपमा दी है।

प्राणियों की हिंसा करना, दूसरों की वस्तु चुरा लेना, दान आदि देने नहीं देना, निर्माल्य का ग्रहण करना इत्यादि कार्यों से अंतराय कर्म का बन्ध होता है।

उपरोक्त कर्मों का बन्ध चार प्रकार का होता है-

१. प्रकृति बन्ध २. स्थिति बंध ३. प्रदेश बंध ४. अनुभाग बंध

१. प्रकृति बन्ध – प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, बंधे हुए कर्मों में अपने स्वभाव के अनुसार प्रकृति पड़ जाना प्रकृति बंध है जैसे ज्ञानावर्णी कर्म का प्रकृति बंध ज्ञान को न होने देने रूप।

२. स्थिति बन्ध – बंधा हुआ कर्म कितने समय तक अपना फल देगा यह समय सीमा निर्धारण स्थिति बन्ध है, जैसे यह कर्म एक वर्ष तक अपना फल देगा ।

३. प्रदेश बन्ध – बन्धे हुए कर्म स्कंध में प्रदेशों की स्कंध संख्या प्रदेश बंध पर निर्भर करती है, जैसे अमुख कर्म में संख्यात अथवा असंख्यात प्रदेश हैं।

४. अनुभाग बन्ध – बन्धे हुए कर्म में फल देने की शक्ति की हीनाधिकता का निर्धारण अनुभाग बंध से होता है जैसे यह कर्म तीव्रता से उदय में आया अथवा मन्दता से यानि सिर दर्द बहुत तेज है अथवा हल्का-हल्का।

एक उदाहरण के माध्यम से इन चारों बन्धों को समझें- बाजार से एक नीबू खरीदा, नीबू का स्वभाव खट्टा है, प्रकृति बन्ध का परिणाम। नीबू एक माह तक खाने योग्य है-स्थिति बंध का परिणाम, नीबू बहुत खट्टा है- अनुभाग बंध का परिणाम, नीबू २०० पुद्गल परमाणु से मिलकर बना है अथवा इसमें ८ कली हैं, प्रदेश बंध का परिणाम है।

इस प्रकार शुभाशुभ कर्म के बंध को जानकर उनके बंध के कारण उनका फल जानकर विवेकपूर्वक कर्मों से बचने का, छुटकारा पाने का उपाय ही कर्म सिद्धान्त को पढ़ने-समझने का प्रयोजन है।

अहिंसा बिलछानी

जिन जिनालयों में कुएँ की सुविधा उपलब्ध नहीं है एवं अभिषेक ट्यूबवेल बोर के जल से किया जाता है जिससे बिलछानी (जिवाणी) की समस्या बनी रहती है और असंख्यात त्रस जीवों का घात होता है। जिस तरह कुएँ में बाल्टी के माध्यम से जिवाणी डाली जाती है उसी तरह जिवाणी यंत्र के माध्यम से बोरिंग में जिवाणी डाली जाती है।

इस यंत्र के निर्माण में स्टील के अलावा किसी रबर या चमड़े आदि का इस्तेमाल नहीं किया गया है इसलिए यह पूर्ण रूप से शुद्ध है, अशुद्धि का दोष नहीं लगेगा। पानी छानकर जो त्रस जीवों को जाने-अनजाने में घात हो जाता है, इस बिलछानी (जिवाणी) यंत्र द्वारा उसे वापस उसी स्थान पर पहुँचाया जा सकता है एवं असंख्यात जीवों के घात से बचा जा सकता है।

इस बिलछानी यंत्र के उपयोग से जीवों की रक्षा होगी, मंदिरों में अभिषेक के लिए एवं आचार्य संघ, मुनिसंघ, आर्यिका संघ, त्यागी-व्रतियों की आहारचर्या हेतु शुद्ध जल की प्राप्ति होगी।

इस यंत्र को श्री मंदिर जी में, त्यागी-व्रती आश्रमों में लगवाने (दान करने) से प्रतिदिन असंख्यात त्रस जीवों की रक्षा होगी एवं आगम की परम्परानुसार सातिशय पुण्य का संचय होगा। इस यंत्र का निर्माण ऋषभ जैन, विदिशा (म.प्र.) द्वारा भी किया जाता है।

उद्देश्य

अहिंसा जिवाणी यंत्र को देश के कोने-कोने में लगाना। पानी छानने, जिवाणी करने की जो आगम में परम्परा है वह लुप्त होती जा रही है उसके प्रति जागरूकता लाना।

इन्द्रिय सुख कैसा?

एक तेली तेल पैरने का कार्य करता था। उसके पास एक बूढ़ा बैल था। जिसके सहारे उसकी आजीविका चलती थी। अचानक बीमारी के कारण बैल की मृत्यु हो जाती है। उसके यहाँ एक सेठजी तेल लेने आते हैं। तो वह उदास होकर कहता है कि सेठजी, मेरा बैल मर गया है। मैं घान में तेल नहीं निकाल सकता। सेठजी ने कहा- कोई बात नहीं, तुम मुझसे रुपया उधार ले लो और नया बैल खरीद लाओ। वह नया बैल खरीद लाता है।दूसरे दिन फिर सेठजी तेल लेने आते हैं। तेली उदासी से कहता है सेठजी नया बैल तो निकम्मा निकल गया। वह एक ही स्थान पर खड़ा रहता है। आगे बढ़ता ही नहीं। सेठजी ने कहा- ऐसा करो एक लकड़ी में हरी घास बाँध देना और बैल के सामने ले जाना। उसने वैसे ही किया। बैल ने जैसे ही हरी घास देखी, घूमना शुरू किया। तेली का काम बन गया। वह बैल डंडे से बँधी घास को पाने के व्यामोह में सुबह से शाम तक चक्कर लगाता रहा पर उसे हरी घास हासिल न हो सकी।

ठीक इसी प्रकार संसारी जीव इन्द्रिय सुख को पाने की लालसा में चारों गतियों में परिभ्रमण करता रहता है। दु:ख उठाता रहता है और अतीन्द्रिय हरी घास रूपी सुख से वंचित रह जाता है। उसी बैल की तरह।

विषापहार

द्विसंधान महाकाव्य के प्रणेता/रचयिता कविराज धनञ्जय पूजन में लीन थे। उनके सुपुत्र को सर्प ने डस लिया था। घर से कई बार खबर आने पर भी वे निस्पृह भाव से पूजन में पूर्णतया तन्मय रहे। इकलौते पुत्र की गंभीर स्थिति देख कुपित होकर उनकी धर्मपत्नी बच्चे को लेकर जिनमंदिर में आ गई और उसी मूर्छित अवस्था में पुत्र को पति के सामने डाल दिया।

पूजा से निवृत्त हो धनञ्जय ने विचार किया। जिनभक्ति का प्रभाव यदि आज नहीं दिखाया तो लोगों की श्रद्धा धर्म से उठ जाएगी। तत्काल ही वे भक्ति में लीन हो विषापहारस्तोत्र की रचना करते हुए प्रभु से कहने लगे-हे प्रभो! इस बालक का विष उतारने के लिए मैं मणि, मंत्र, औषधि की खोज में भटकने वाला नहीं मुझे तो आप रूप कल्पवृक्ष का ही आश्रय है सत्य है कि भगवन्! लोग विषापहार मणि, औषधियों, मंत्र और रसायन की खोज में भटकते फिरते हैं, वे नहीं जानते कि ये सब आपके ही पर्यायवाची नाम हैं। इधर स्तोत्र रचना हो रही थी उधर पुत्र का विष उतर रहा था। स्तोत्र पूरा होते ही बालक निर्विष होकर उठ बैठा, चारों ओर जैनधर्म की जय-जयकार गूँज उठी धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

भजन

इतनी शक्ति हमें देना दाता,
मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे,
भूलकर भी कोई भूल हो ना॥
दूर अज्ञान के हों अन्धेरे,
तू हमें ज्ञान की रोशनी दे।
हर बुराई से बचते रहें हम,
जितनी भी दे भली जिन्दगी दे।
बैर हो न किसी का किसी से,
भावना मन में बदले की हो ना ॥
हम चलें..... ॥
हम अंधेरे में हैं रोशनी दे,
खो न दे खुद को ही दुश्मनी से।
हम सजा पाएँ अपने किये की,
मौत भी हो तो सह लें खुशी से।
दर्द गुजरा है कल फिर न गुजरे,
आने वाला वो कल ऐसा हो ना॥
हम चलें..... ॥
हम न सोचें हमें क्या मिला है,
हम ये सोचें किया क्या है अर्पण।
फूल खुशियों के बाँटें सभी को,
सबका जीवन ही बन जाए मधुवन।
अपनी करुणा का जल तू बहा कर,
कर दे पावन हर इक मन का कोना॥
हम चलें..... ॥
हर तरफ जुल्म है बेबसी है,
सहमा-सहमा-सा हर आदमी है।
पाप का बोझ बढ़ता ही जाए,
जाने कैसे ये धरती थमी है।
बोझ ममता का तू ये उठा ले,
प्यारी रचना का यूँ अन्त हो ना॥
हम चलें..... ॥
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे,
भूलकर भी कोई भूल हो ना॥

रोने से कम होता है ये गम।
तो दु:ख में बेशक रो लो तुम।।
किन्तु मुस्करा कर जीने वालों को।
सुखी मत समझ लेना तुम।।

जहाँ हर सिर झुक जाए उसे मंदिर कहते हैं,
जहाँ सब नदियाँ सिमट जाएँ उसे समुन्दर कहते हैं।
यहाँ मुश्किलों से भरी दुनिया है बंधुओं,
जो हर मुश्किल को पार कर जाए उसे सिकन्दर कहते हैं।

पाठ्यक्रम - ८

८ ब सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और मन्त्रीश्वर चाणक्य

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के अंतिम पाद में शक्तिशाली नन्दवंश का उच्छेद कर मौर्य वंश की स्थापना करने वाले प्रधान नायक ये दोनों थे। जो गुरु-शिष्य थे। चाणक्य राजनीति विद्या-विलक्षण एवं नीति विशारद ब्राह्मण पंडित था। चन्द्रगुप्त पराक्रमी एवं तेजस्वी क्षत्रिय वीर था। इस विरल मणि-कांचन संयोग को सुगन्धित करने वाला अन्य सुयोग यह था कि वह दोनों ही अपने-अपने कुल परम्परा तथा व्यक्तिगत आस्था की दृष्टि से जैन धर्म के प्रबुद्ध अनुयायी थे।

चाणक्य का जन्म ईसा पूर्व ३७५ के लगभग चणय नामक ग्राम में हुआ था। माता का नाम चणेश्वरी एवं पिता का नाम चणक था। चणक के पुत्र होने से उनका नाम चाणक्य हुआ। यह लोग जाति की अपेक्षा ब्राह्मण थे किन्तु धर्म की दृष्टि से पापभीरु जैन श्रावक थे। शिशु चाणक्य के मुँह में जन्म से ही दाँत थे, यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस लक्षण को देख भविष्य वक्ता ने इसे ''एक शक्तिशाली नरेश'' होना बताया। ब्राह्मण चणक श्रावकोचित क्रिया करने वाला था, संतोषी वृत्ति का धार्मिक व्यक्ति था वैसे ही उनकी सहधर्मिणी थी। राज्य वैभव को वे लोग पाप और पाप का कारण समझते थे। अतएव चणक ने शिशु के दाँत उखड़वा डाले। इस पर साधुओं ने भविष्य वाणी की, कि अब वह स्वयं राजा नहीं बनेगा, किन्तु अन्य व्यक्ति के माध्यम से राज्य शक्ति का उपयोग और संचालन करेगा। बड़े होने पर तात्कालिक ज्ञान केन्द्र तक्षशिला तथा उसके आस-पास निवास करने वाले आचार्यों से शिक्षण प्राप्त किया। तीक्ष्ण बुद्धिमान होने से समस्त विद्याओं एवं शास्त्रों में वह पारंगत हो गया। दरिद्रता धनहीनता से पीड़ित चाणक्य पाटलीपुत्र के राजा महापद्मनंद के पास पहुँचा। अपनी विद्वता से उसने राजा को प्रभावित किया एवं दान विभाग के प्रमुख का पद प्राप्त किया। किन्हीं कारणों से राजपुत्र के द्वारा किए गए अपमान से क्षुब्ध एवं कुपित चाणक्य ने भरी सभा में नंद वंश के समूल नाश की प्रतिज्ञा की और पाटलिपुत्र का परित्याग कर दिया। घूमते-घूमते वह मयूर ग्राम पहुँचा, वहाँ के मुखिया की इकलौती लाड़ली पुत्री गर्भवती थी, उसी समय उसे चन्द्रपान का विलक्षण दोहला उत्पन्न हुआ। जिसके कारण घर के लोग चिंतित थे। चाणक्य ने उसके दोहले को शांत करने का आश्वासन दिया और यह शर्त रखी कि यह लड़का हुआ तो उस पर मेरा अधिकार होगा जब चाहे उसे ले जा सकता हूँ। अन्य कोई उपाय न देखकर शर्त मान ली गई, तब चाणक्य ने एक थाली में जल भरवाकर उसमें पूर्ण चन्द्र को प्रतिबिम्बित कर गर्भिणी को इस चतुराई से पिला दिया कि उसे विश्वास हो गया कि उसने चन्द्रपान किया। कुछ दिनों बाद मुखिया की पुत्री ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। यह घटना ईसा पूर्व ३४५ के आसपास की है। विशाल साम्राज्य के स्वामी नंद वंश को नष्ट करना हँसी खेल नहीं था। यह चाणक्य जानता था फिर भी धुन का पक्का था अतएव धैर्य के साथ अपनी तैयारी में संलग्न हो गया। अपने कई वर्ष उसने धातु विद्या की सिद्धि एवं स्वर्ण आदि धन एकत्र करने में व्यतीत किए। आठ-दस वर्ष बाद पुनः चाणक्य उसी मयूर ग्राम में आया। वहाँ पर उसने खेलते हुए कुछ बालक देखे। कौतुक वश वह उनके खेल को देखने लगा। बाल राजा के अभिनय से वह अत्यन्त आकृष्ट हुआ पास जाकर उसने उस बालक को राजा बनने योग्य लक्षणों को पाया, तब मित्रों से उसका पता पूछने पर ज्ञात हुआ यह वही मुखिया का नाती है चन्द्रगुप्त तब अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ माता-पिता को अपने वचनों का स्मरण करा राजा बनाने के उद्देश्य वश उसे ले गया। कई वर्षों तक उसने चन्द्रगुप्त को विविध अस्त्र-शस्त्रों के संचालन, युद्ध-विद्या, राजनीति तथा अन्य उपयोगी ज्ञान-विज्ञान एवं शास्त्रों की समुचित शिक्षा दी एवं धीरे-धीरे युवा वीर साथी जुटा लिये।

ई.पू. 325 के लगभग चाणक्य के पथ प्रदर्शन में मगध राज्य की सीमा पर अपना एक छोटा-सा स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। कुछ दिनों पश्चात् इन्होंने छद्म भेष में नन्दों की राजधानी पाटलीपुत्र में प्रवेश कर आक्रमण कर दिया। चाणक्य के कूट कौशल के बाद भी नंदों की असीम सैन्य शक्ति के सम्मुख ये बुरी तरह पराजित हुए। औरे जैसे-तैसे प्राण बचाकर भागे। एक बार घूमते हुए रात्रि में उन्होंने एक झोपड़े में बुढ़िया की डाट सुनी कि हे पुत्र! तू भी चाणक्य के समान अधीर एवं मूर्ख है, जो गर्म-गर्म खिचड़ी को बीच से ही खा रहा है, हाथ न जलेगा तो क्या होगा। चाणक्य को समझ आयी कि सीधे राजधानी पर हमला बोलकर

मैने गलती की फिर उन्होंने नंद साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार करना प्रारंभ किया। एक के पश्चात् एक ग्राम नगर, गढ़ छल-बल कौशल से जैसे भी बना हस्तगत करते चले गए। चन्द्रगुप्त के पराक्रम, रण कौशल एवं सैन्य संचालन पटुता, चाणक्य की कूट नीति एवं सदैव सजग गिद्ध दृष्टि के परिणामस्वरूप प्राय: सभी नन्दकुमार लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

वृद्ध महाराज महापद्म चाणक्य को धर्म की दुहाई दे, सपरिवार सुरक्षित अन्यत्र चले गये। नंद दुहिता राजरानी सुप्रभा का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हुआ और वह अग्रमहिषी बनी। इस प्रकार ई.पू. ३१७ में पाटलीपुत्र में नंदवंश का पतन और उसके स्थान पर मौर्य वंश की स्थापना हुई। व्यक्तिगत रुप से सम्राट चन्द्रगुप्त धार्मिक एवं साधु सन्तों को सम्मान करने वाला था। प्राचीन सिद्धान्त शास्त्र तिलोय पण्णत्ति में चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय कुलोत्पन्न मुकुटबद्ध माण्डलिक सम्राटो में अंतिम कहा गया है जिन्होंने दीक्षा लेकर अंतिम जीवन जैन मुनियों के रूप में व्यतीत किया। उनके गुरु आचार्य भद्रबाहु थे। जिन्होंने श्रवण बेलगोला में समाधि मरण ग्रहण किया। उसी स्थान के एक पर्वत पर कुछ वर्ष उपरांत चन्द्रगुप्त मुनिराज ने सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

लगभग २५ वर्ष राज्य भोग करने के पश्चात् ईसा पूर्व २९८ में अपने पुत्र बिम्बसार को राज्यभार सौंपकर और उसे गुरु चाणक्य के ही अभिभावकत्व में छोड़ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कुछ दिनों पश्चात् चाणक्य ने भी मन्त्रित्व का भार अपने शिष्य राधागुप्त को सौंपकर मुनि दीक्षा लेकर तपश्चरण के लिए चले गए थे। अंत समय में सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

सब कुछ तो मिल गया है, गुरु दर्शनों के बाद ।
अब और क्या मैं चाहूँ, गुरु दर्शनों के बाद ।।
भव-भव की आरजू थी, वो पूरी हो गयी है ।
ये जो मेरी जिन्दगी है, तेरे चरणों में खो गयी है।
अब और क्या मैं चाहूँ, गुरु दर्शनों के बाद ।
सब कुछ तो .....
दुनिया भी मिल गई है, मंजिल भी मिल गई है।
आँखों को तेरे चरणों की, जन्नत भी मिल गई है।
अब और क्या मैं देखूँ, गुरु को देखने के बाद ।
सब कुछ तो .....

पञ्चमहागुरु भक्ति

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युतिजल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं॥ 1॥
सम्यक्त्वादिक वसु-गुण धारे, वसु-विध विधि-रिपु नाशन-हारे।
अनेक-सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ ॥ 2॥
श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूँ दु:ख-दलनों को ॥ 3॥
उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण कर लूँ, पाप नष्ट हो सु-मरण कर लूँ॥ 4॥
समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं॥ 5॥
विमल गुणालय-सिद्धजिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को।
नमस्कार पद पञ्च इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से ॥ 6॥
नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है ॥ 7॥
सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता॥ 8॥
सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को ॥ 9॥
सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे ॥ 10॥
महाप्रातिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्ट मातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की॥
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की॥ ११॥

अञ्चलिका

पञ्चमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 1॥

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मण्डित है।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिव पथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥ २॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को ॥ 3॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ॥ 4॥

संस्मरण -बात घर कर गई

अधिकतर यह देखने में आता है कि यदि किसी व्यक्ति को कुछ बात लग जाती है तो वह उस कार्य को अवश्य ही करता है। क्योंकि यह उसका 'प्रेस्टीज प्वाइन्ट' बन जाता है। इसके लिए वह अपना जीवन तक दाव पर लगा देता है। यदि उसका उद्देश्य पारलौकिक हुआ तो समझो कल्याण निश्चित है।

बालक विद्याधर बचपन में बहुत स्वादिष्ट भोजन करने के शौकीन थे। वे मिर्च मसाला, नमक तेल, खटाई, बहुत खाया करते थे, तो परिवार वाले कहा करते थे कि तुम अभी इस प्रकार का शौक रखते हो आगे क्या करोगे? जब वे ब्रह्मचारी बने तो उन्होंने आजीवन नमक, मिर्च, तेल, खटाई का त्याग कर दिया क्योंकि वे समझ गये कि बिना रसना इन्द्रिय विजय के साधु बनना या निर्दोष व्रतों का पालन कठिन है। अर्थात् साधु को रस परित्याग आवश्यक है।

आज उनकी निर्दोष चर्या एवं त्याग तपस्या स्पष्ट देखने में आती है जो उनके संकल्प का परिणाम एवं बचपन की बात का असर हो सकता है। क्योंकि हर सफल व्यक्तित्व के पीछे कोई न कोई घटना अवश्य छिपी रहती है, जिस प्रकार महल या मंदिर के नीचे नींव।

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते (मे) मङ्गलम्॥१॥

अर्थ : (इन्द्र-महिताः) इन्द्रों द्वारा पूजित **(अर्हन्तः भगवन्तः)** अर्हन्त भगवान **(च)** और **(सिद्धीश्वराः)** सिद्धि के स्वामी **(सिद्धाः)** सिद्ध भगवान **(जिनशासनोन्नतिकराः)** जिनशासन की उन्नति करने वाले **(आचार्याः)**आचार्य परमेष्ठी **(श्रीसिद्धान्त-सुपाठकाः)** श्री युक्त सिद्धान्त को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले **(पूज्या उपाध्यायकाः)** पूज्य उपाध्याय परमेष्ठी **(रत्नत्रया-राधकाः)** रत्नत्रय के आराधक **(मुनिवराः)** साधु परमेष्ठी **(एते पञ्च)** ये पाँच **(परमेष्ठिनः)** परमेष्ठी **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत-रत्नप्रभा-,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाऽम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ २॥

अर्थः (श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-भास्वत्-पाद-नखेन्दवः) लक्ष्मी से संयुक्त नम्रीभूत देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से सुशोभित चरणों के नखरूपी चन्द्रमा हैं जिनके और **(प्रवचनाम्भोधीन्दवः)** जो प्रवचनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं **(स्थायिनः)** जो अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं **(योगीजनैः स्तुत्या)** योगीजनों के द्वारा स्तुति को प्राप्त **(जिनसिद्ध-सूरि-अनुगताः)** अर्हन्त, सिद्ध, सूरि-आचार्य के अनुगामी **(पाठकाः)** उपाध्याय और **(साधवः)** साधुजन **(ये सर्वे)** ये सभी **(ते मंगलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति - श्री - नगराऽधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ३॥

अर्थ : (अमलम्) निर्मल **(सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तं त्रिविधं)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तीन प्रकार का **(पावनम् रत्नत्रयम्)** पवित्र रत्नत्रय **(मुक्तिश्री नगराधिनाथ जिनपति उक्तः)** मुक्तिरूपी लक्ष्मी के नगर के स्वामी जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया **(अपवर्ग-प्रदः)** मोक्ष को देने वाला **(धर्मः)** **जिनधर्म, (सुक्तिसुधा)** शास्त्ररूपी अमृत/जिनागम, **(अखिलम् चैत्यम्)** समस्त जिन प्रतिमाएँ **(च)** और **(श्र्यालयं चैत्यालयं)** वैभव/शोभा के स्थान चैत्यालय **(चतुर्विधम्)** चार प्रकार **(प्रोक्तं)** कहे गए **(अमी)** ये सभी **(ते मंगलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोतरा विंशति-
स्त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ४॥

अर्थ : (त्रिभुवनख्याताः) तीनों लोकों में विख्यात **(नाभेयादिजिनाधिपाः)** नाभिपुत्र ऋषभादि जिनस्वामी

(**चतुर्विंशतिः**) चौबीस तीर्थङ्कर (**श्रीमन्तः**) लक्ष्मीवान (**यः**) जो (**भरतेश्वरप्रभृतयः**) भरतेश्वरादि (**द्वादश-चक्रिणः**) 12 चक्रवर्ती (**यः विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः**) जो 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र (**सप्तोतराविंशतिः**) सात अधिक बीस अर्थात् सत्ताईस इस प्रकार (**त्रैकाल्ये**) तीनों कालों में (**प्रथिताः**) प्रसिद्ध (**त्रिषष्टि पुरुषाः**) त्रेसठ शलाका पुरुष (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

ये सर्वौषधिऋद्धयः सुतपसो वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला येऽष्टौ विधाश्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ५॥

अर्थ : (**ये सुतपसः**) जो श्रेष्ठ तप से (**वृद्धिङ्गताः**) वृद्धि को प्राप्त (**पञ्च**) पाँच (**सर्वौषधि ऋद्धयः**) सर्वौषधि ऋद्धि के धारी (**च**) और (**यः अष्टाङ्ग महानिमित्त कुशलाः**) जो अष्टाङ्ग महानिमित्तों में कुशल (**च अष्टौ**) और आठ (**विधाश्चारिणः**) आकाश आदि चारण ऋद्धियों के धारक (**पञ्च-ज्ञानधराः**) पाँच प्रकार के ज्ञानऋद्धिधारी (**त्रयः बलिनः अपि**) तीन प्रकार के बल ऋद्धि वाले (**यः बुद्धि-ऋद्धीश्वराः**) जो बुद्धि ऋद्धि के स्वामी (**एते सप्त**) ये सात (**सकलार्चिता गणभृतः**) सभी के द्वारा पूजित श्रेष्ठ गणधरदेव/मुनिजन (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनाऽमरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू-शाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ६॥

अर्थ : (**ज्योतिर्व्यन्तर-भावन-अमरगृहे**) ज्योतिषियों, व्यन्तरों, भवनवासियों और वैमानिक देवों के निवास स्थान में (**मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः**) मेरुओं पर, कुलाचलों में स्थित (**जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु**) जम्बूवृक्ष, शाल्मलिवृक्ष, चैत्यवृक्ष की शाखाओं पर (**तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु**) तथा वक्षारगिरि, विजयार्ध पर्वतों पर (**इष्वाकारगिरौ**) इष्वाकार/बाण के आकार वाले पर्वत पर (**च कुण्डलनगे**) और कुण्डल पर्वत पर (**च नन्दीश्वरे द्वीप**) और नन्दीश्वर द्वीप में (**मनुजोत्तरे शैले**) मानुषोत्तर पर्वत पर (**ये जिनगृहाः**) जो जिन चैत्यालय हैं, (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ७॥

अर्थ : (**कैलासे**) कैलासपर्वत पर (**वृषभस्य**) ऋषभदेव की (**निर्वृतिमही**) निर्वाणभूमि है (**वीरस्य**) महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि (**पावापुरे**) पावापुर में है (**वसुपूज्यतुग्जिनपतेः**) वसुपूज्य राजा के पुत्र वासुपूज्य की निर्वाणभूमि (**चम्पायाम्**) चम्पापुर में है (**अर्हतः नेमीश्वरस्य**) अरिहंत नेमिनाथ भगवान् की निर्वाणभूमि (**ऊर्जयन्तशिखरे**) ऊर्जयन्तपर्वत पर (**च**) और (**शेषाणाम् अर्हताम् अपि**) शेष तीर्थङ्करों की भी (**प्रसिद्धविभवाः**) प्रसिद्ध वैभववाली (**निर्वाण-अवनयः**) निर्वाणभूमियाँ (**सम्मेदशैल**) सम्मेदशिखर पर हैं (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ८॥

अर्थ : (**धर्मात् एव**) धर्म के प्रभाव से ही (**सर्पो हारलता**) सर्प गले का हार (**भवति**) हो जाता है (**असिलता**) तलवार (**सत्पुष्पदामायते**) सुंदर पुष्पों की माला बन जाती है (**विषं अपि**) विष भी (**रसायनं**) अमृत (**सम्पद्येत**) हो जाता है (**रिपुः**) शत्रु (**प्रीतिं विधत्ते**) प्रीति को धारण करता है। (**प्रसन्नमनसः**) प्रसन्न मन से (**देवाः**) देवगण (**वशं**) वश में (**यान्ति**) हो जाते हैं। (**वा**) और (**किं बहु ब्रूमहे**) बहुत क्या कहें (**धर्मात्**) उस धर्म से (**नभः अपि**) आकाश भी (**नगैः**) रत्नों से (**वर्षति**) बरसता है अर्थात् आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है वह धर्म (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

यो गर्भाऽवतरोत्सवो भगवतां जन्माऽभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ९॥

अर्थ : (**यः भगवताम्**) जो भगवानों के (**गर्भावतरोत्सवः**) गर्भकल्याणक का उत्सव (**जन्माभिषेकोत्सवः**) जन्मकल्याणक का उत्सव (**यः परिनिष्क्रमेण विभवः जातः**) जो तपकल्याणक उत्सव के द्वारा वैभव हुआ (**यः केवलज्ञानभाक्**) जो केवलज्ञानकल्याणक को प्राप्त हुए (**च**) और (**यः कैवल्यपुर-प्रवेशमहिमा**) जो कैवल्यपुर मोक्ष में प्रवेश की महिमा अर्थात् निर्वाण कल्याणक (**स्वर्गिभिः**) देवों के द्वारा (**यः संभावितः**) जो पूजा की गई (**तानि पञ्च**) वे पाँचों (**कल्याणानि**) कल्याणक (**ते सततम्**) तुम्हारा हमेशा (**मङ्गलम्**) मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्चसुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।१०।।

अर्थ : (**इत्थम्**) इस प्रकार (**सौभाग्य संपत्प्रदम्**) सौभाग्य रूपी सम्पत्ति के प्रदाता (**इदं श्री जिनमंगलाष्टकम्**) इस श्री जिन मङ्गलाष्टक को (**सुधियः**) विद्वान् (**तीर्थङ्कराणाम्**) तीर्थङ्करों के (**कल्याणेषु महोत्सवेषु**) कल्याणक महोत्सवों में (**यः**) जो (**उषः**) प्रातःकाल (**शृण्वन्ति च पठन्ति**) सुनते और पढ़ते हैं (**तैः सुजनैः**) उन सज्जनों के द्वारा (**धर्मार्थकामन्विता**) धर्म, अर्थ और काम से सहित (**लक्ष्मीः आश्रयते**) लक्ष्मी प्राप्त की जाती है और (**व्यपायरहिता**) विनाश रहित अर्थात् अविनश्वर (**निर्वाणलक्ष्मीः अपि**) मोक्ष लक्ष्मी भी (**आश्रयते**) प्राप्त करते हैं।

.....

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माँहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥१॥
इह विधि राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरंतर, जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे॥२॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणी, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥३॥

मुनि-सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग स्वरूप विचार्‌यो, परम धरम अनुरागी॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुःख पावै॥४॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ वध बंधन भयकारी॥
सुरगति में परसंपति देखें, राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय,सर्व सुखी नहिं कोई॥५॥

कोई इष्ट-वियोगी बिलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखै, कोई तन के रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुःख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई॥६॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संतति सों दुख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै॥
पुण्य उदय जिनके-तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यो जगवास जथारथ देखें, सब दीखै दुखदाता॥७॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे कों शिव साधन करते, संजमसों अनुरागै॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई॥८॥

सात कुधातुभरी मल-मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है?॥
नव-मल-द्वार स्त्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि-उपाधि अनेक जहाँ-तहँ, कौन सुधी सुख पावै॥९॥

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन-जोग स्वरूप न याको, विरचन-जोग सही है।
यह तन पाय महा तप कीजे यामें सार यही है॥१०॥

भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई॥११॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवै॥१२॥

मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्यासम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा॥१३॥

मोह महा-रिपु बैर विचार्‌यो, जग-जिय संकट डारे।
घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥१४॥

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपत्ति बहुतेरी जीरण-तृण सम त्यागी।
नीति-विचार नियोगी सुत कों, राज दियो बड़भागी॥१५॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज भारी।
ऐसी संपत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥१६॥

दोहा

परिग्रहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भए, वज्रनाभि निरग्रंथ॥

.....

कुछ भी ज्ञान न होने पर चिंता नहीं करना यही धर्म ध्यान है